अंक : 134
ISSN : 2348-6260

मूल्य : 450/-

उद्भावना

जन भावनाओं का साझा मंच

दलित साहित्यान्दोलन,
नयी पेशवाई, पुरानी पेशवाई,
दलित उपलब्धियों का जश्न,
सफाईकर्मियों रहित स्वच्छ भारत अभियान,
हिंदी सिनेमा में दलित,
सारिका के दलित साहित्य विशेषांक (1975) से कुछ अंश,
मराठी दलित कविताएँ
काज़ी अब्दुस्सत्तार को श्रद्धांजलि व अन्य स्थायी स्तंभ

उद्भावना

वर्ष : 33 अंक : 134

अक्टूबर-दिसम्बर 2018

दिसम्बर 2018 में प्रकाशित

सलाहकार मंडल

असग़र वजाहत, डॉ. राजकुमार शर्मा,
राजेश जोशी, रामप्रकाश त्रिपाठी, रमन मिश्र

संपादक मंडल

अजेय कुमार (संपादक)
हरियश राय (उप संपादक)
मुशर्रफ अली
विनीत तिवारी

सहयोग

रामपाल कटवालया

संपादकीय पता

एच-55, सेक्टर 23, राजनगर, गाजियाबाद

पत्राचार का पता

ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रिअल एरिया,
जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095

फोन: 22582847, मो. 09811582902
E-mail: udbhavana.ajay@yahoo.com
pd.press@gmail.com

आवरण चित्र : बंशीलाल परमार

सहयोग राशि

यह अंक	:	**40 रु.**
वार्षिक	:	300 रु.
संस्थानों से वार्षिक	:	500 रु.
आजीवन (व्यक्ति)	:	3000 रु.
आजीवन (संस्थानों के लिए)	:	5000 रु.
संरक्षक	:	10,000 रु.

सभी मनीआर्डर/चैक/ड्राफ्ट
'उद्भावना' के नाम से पत्राचार के पते पर ही भेजें.

जो हमारे अकाउंट में सीधे जमा करना चाहते हैं,
वे कृपया निम्न सूचना देखें

अकाउंट : UDBHAVANA
अकाउंट न. : 90261010002100
बैंक : सिंडीकेट बैंक
ब्रांच : राजेंद्र नगर, नई दिल्ली-110060
IFSC : SYNB0009026

आजीवन सदस्यों को अब तक छपे सभी उपलब्ध
महत्त्वपूर्ण विशेषांक भेंट स्वरूप दिए जाएंगे

पत्रिका में छपे विचार लेखकों/लेखिकाओं के अपने हैं,
उनसे संपादकीय सहमति होना अनिवार्य नहीं है।

दलित आंदोलन पर विशेष

आलेख

नयी पेशवाई, पुरानी पेशवाई	**सुभाष गाताड़े**	7
दलित उपलब्धियों का जश्न	**चंद्रकांत राजू**	13
दलित साहित्यान्दोलन : परिवर्तन का आंबेडकरी पथ	**बजरंग बिहारी तिवारी**	32
सफ़ाईकर्मियों रहित, स्वच्छ भारत अभियान		55
रोजगार में आरक्षण : एक विश्लेषण	**मुर्शरफ अली**	58
गांधी और अम्बेडकर - मुक्तिधर्मविज्ञानी	**आनंद पटवर्धन**	60

सारिका के पन्नों से

आज का यथार्थ : समांतर संसार	**कमलेश्वर**	20
दलित साहित्य की पहली मासिक पत्रिका: अस्मितादर्श	**प्रो. गंगाधर पानतावणे**	22
दलित साहित्य : प्रक्रिया एवं रूपरेखा	**प्र.श्री. नेरूरकर**	24

कहानी व उपन्यास अंश

रफ्तार	**राजेंद्र चंद्रकांत राय**	5
सांप	**रत्नकुमार सांभरिया**	36
पीतल का घंटा, रज़्ज़ो बाजी	**काज़ी अब्दुस्सत्तार**	48
नई दिल्ली एक्सप्रेस	**ज्ञानप्रकाश विवेक**	63

श्रद्धांजलि

दिनेश बैस	**प्रेम कुमार गौतम**	2
काज़ी अब्दुल सत्तार : निराला था लेखन और व्यक्तित्व	**नमिता सिंह**	44
काज़ी अब्दुस्सत्तार : कथात्मक गद्य के विलक्षण शैलीकार	**जानकीप्रसाद शर्मा**	47

सिनेमा

हिन्दी सिनेमा में दलित	**जितेन्द्र विसारिया**	70
स्त्री की हदबंदी से जाति को पकड़ने का प्रयास	**प्रमोद मीणा**	78
फिर भी कुछ छूट जाता है मंटो	**प्रियदर्शन**	81
मोहल्ला अस्सी	**विजय कुमार**	82

कविताएँ व ग़ज़लें

डब्ल्यू कपूर-30/ अरविंद पोहोरकर-30/ विश्वास प्र. वसेकर-30/ वामन दादा कर्डक-30/ शरद कुमार लिंबाड़े-30/ प्रहलाद चेंदवणकर-31/ गोविंद बाघमरे-31/ शशिकांत लोखंडे-31 फहमीदा रियाज-43 / उमेर नज़मी-83/ अख्तर वामिक-95

पुस्तक समीक्षा

उर्दू अदब के सरोकार : डॉ. राजकुमार शर्मा-84/ हाँ! मैंने कहा व कृति और कृतिकार : हरियश राय-87/ हैश, टैग और मैं : श्रवण कुमार उर्मलिया-89

गतिविधियाँ

फहमीदा रियाज पर विचार गोष्ठी-91/ कथा कहानी की ओर से आयोजित दो गोष्ठियां-92/ जलेस उ.प्र. का 8वां सम्मेलन-94/ फ्लाई किलर का कहानी पाठ-96

अन्य : चित्रा मुद्गल को साहित्य अकादमी पुरस्कार : हरियश राय-4

जिद्दी कवि, जुझारू कार्यकर्ता व लेखक दिनेश बैस का देहावसान

☐ प्रेम कुमार गौतम

झांसी के इतिहास में 7 दिसंबर 2018 की तारीख एक क्रांतिकारी घटना के रूप में दर्ज हो गई है। जनवादी लेखक संघ झांसी की प्रेमनगर इकाई के पूर्व सचिव, प्रगतिशील लेखक संघ झांसी इकाई के वर्तमान अध्यक्ष, कवि, कथाकार, दैनिक जागरण के व्यंग्य स्तंभकार व रेलवे कारखाना के सेवानिवृत्त टेक्निशियन कामरेड दिनेश बैस के निधन के बाद उनकी इच्छानुसार जब उनका मृत शरीर शमशान के बजाय झांसी मेडिकल कॉलेज के एनाटॉमी विभाग पहुंचा तो शहर के लोगों को इस घोर वैचारिक कलमकार की क्रांति का बोध हुआ। दिनेश बैस का शरीर यहां के मेडिकल कॉलेज को झांसी से प्राप्त पहला देहदानी शरीर है। वर्ष 1964 में निर्मित महारानी लक्ष्मीबाई मेडिकल कॉलेज व चिकित्सालय के छात्रों को पढ़ाई के लिए वर्षों से कोई देह नहीं मिल रही थी। इस विकट समस्या का निवारण कवि व दैनिक जागरण में लगभग चार दशकों से व्यंग्य कॉलम लिखते आ रहे कामरेड दिनेश बैश ने कर दिया। उनका कॉलम 'मन की मौज, मुद्दे की बात, बामदेव, बामुलाहिजा, शहर बीवा सप्ताह गाहे-बगाहे' पढ़ते आ रहे पाठकों के साथ-साथ उनके लेखक, ट्रेड यूनियन साथी उनकी रिक्तता के शोक के साथ घोर आश्चर्य से भी डूबे दिखाई दिए। जीते जी सर्वहारा के लिए कलम व रेल कारखाने में जूझते रहे दिनेश बैस देहदान कर समाज, समकालीन साहित्य की कसौटी पर खरे सिद्ध हुए। विचलित क्षुब्ध गजानन माधव मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' का जश्न--अब तक क्या किया/जीवन क्या जिया बताओ तो किस किसके लिए दौड़े तुम/ कभी किसके लिए तुम्हारी आंख हुई नम/ पाया बहुत-बहुत ज्यादा/ खोया बहुत कम/ मर गया देश अरे जीवित रहे तुम''। झांसी में जब जलेस का कार्यालय नहीं था तब उनका घर जलेस कार्यालय बना। तमाम अभियानों, आंदोलनों, गोष्ठियों, चुनाव विचार, बहसें आदि उन्हीं के घर के ऊपरी कक्ष में होतीं। झांसी के साप्ताहिक अखबार 'निधिमेल' में उनका जीवन का प्रथम साक्षात्कार प्रकाशित हुआ था। इसका शीर्षक था--'हां, मैं प्रतिबद्ध कवि हूं।'

स्थानीय पत्रिका अभियान टुडे के लिए उनका संस्मरण लिखते जलेस सुल्तानपुर जिला इकाई के पूर्व अध्यक्ष प्रो. जगदीश खरे के आंसू आंखों से निकलकर पन्नों पर गिर रहे हैं। ''क्या आदमी था वह भी, देखो तो मरकर भी किसी के काम आ गया। इतिहास बन गए, अमर हो गए भाई दिनेश।'' दैनिक जागरण जो मात्र एक शोक समाचार या चार पंक्तियों की शोकसभा के अलावा कभी किसी कवि, लेखक, पत्रकार, कलाकार के निधन पर कुछ और लिखता तक नहीं, अपने स्तम्भकार दिनेश बैस के निधन (देहदान) की खबर प्रथम पृष्ठ पर मेनलीड में प्रकाशित कर रहा था। 'दिनेश बैस बने दधीचि' जागरण झांसी के 7 दिसंबर 2018 के अंक में प्रथम पृष्ठ पर छपी देहदान की खबर जागरण के 15 वर्ष के प्रकाशन की प्रथम अनूठी खबर है।

दैनिक जागरण में लगभग चालीस वर्ष गुजारकर एक युग देख चुके पत्रकार मोहन नेपाली याद कर कहते हैं--''पहले ऐसा कभी नहीं हुआ। झांसी क्या समूचे बुंदेलखंड के किसी व्यक्ति ने मेडिकल को देहदान नहीं की। दिनेश बैस का देहदान ऐतिहासिक घटना है।'' और मैं गत 8 अक्टूबर को प्रेमचंद की पुण्यतिथि पर आयोजित कथा गोष्ठी में उन्हें कथा 'चेतना थम सी गई हो' का पाठ करते अंतिम बार देख रहा था तो कहां जान पाया कि वे मेडिकल कॉलेज की मोर्चरी में मौजूद फार्मोलीन के रव में डूबने चले जाएंगे। तमाम लोगों के लिए कवि कथाकार दिनेश बैस का लेखन और खुद वे भी करैला और नीम चढ़ा था। यही नीम चढ़ा करैला लेखक साथी परहित, परोपकार का साक्ष्य बन गया है। झांसी से भोपाल प्रवास के लिए रवाना होने से पूर्व उनसे विदा लेने उनके घर पहुंचा मैं वर्ष 1992 की सुबह बिछोह की जो गहन किंतु मूक वेदना में कामरेड दिनेश बैस की सूनी आंखों में देख रहा था वह अब उनके बिछोह ने मेरी आंखें भर दी हैं। स्मृतियां हैं कि रह रह कर दस्तक दिए जाती हैं। साथियों के मध्य मासिक गोष्ठी में मेरी पसंदीदा रचना पढ़ते साथी दिनेश बैस का चेहरा बार-बार उभर रहा है--मंदिर से टकराकर छितरा जाती है/मस्जिद की अजान हमारे गांव में/सस्ता बिकता खून हमारे गांव में/सस्ता है ईमान हमारे गांव में।''

मो. : 9453622701

विष्णु खरे

1940-2018

कवि, आलोचक, मित्र व दुश्मन भी

स्वीकार

आप जो सोच रहे हैं वही सही है
मैं जो सोचना चाहता हूँ वह ग़लत है
सामने से आपका सर्वसम्मत व्यवस्थाएँ देना सही है
पिछली कतारों में जो मेरी छिछोरी 'क्यों' है वह ग़लत है
मेरी वजह से आपको असुविधा है यह सही है
हर खेल बिगाड़ने की मेरी ग़ैरज़िम्मेदार हरकत ग़लत है
अँधियारी गोल मेज़ के सामने मुझे पेश किया जाना सही है
रोशनी में चेहरे देखने की मेरी दरख़्वास्त ग़लत है
आपने जो सज़ा तज़वीज़ की है सही है
मेरा यह इक़बाल भी चूँकि चालाकी-भरा है ग़लत है
आपने जो किया है वह मानवीय प्रबंध सही है
दीवार की ओर पीठ करने का मेरा ही तरीका ग़लत है
उन्हें इशारे के पहले मेरी एक ख़्वाहिश की मंजूरी सही है
मैंने जो इस वक्त भी हँस लेना चाहा है ग़लत है

- विष्णु खरे

मदन भारद्वाज

1932-2018

कथाकार, रेलवे ट्रेड यूनियन में एक समय में सक्रिय, मार्गदर्शक और वामपंथी शिक्षक

मदन भारद्वाज की यह कहानियाँ हिंदी गल्प के 1950-70 के उन दशकों में लिखी गयी थीं जिन्हें हिंदी कहानी का स्वर्ण-युग कहा जाता है और भैरवप्रसाद गुप्त-श्रीपतराय द्वारा संपादित मासिक ''कहानी'' ने, जिसमें इस संकलन की अधिकाँश रचनाएँ छपी थीं, अपनी विधा में ऐसे कालजयी मानदंड स्थापित किए थे जिन्हें कोई अन्य पत्रिकाएं, संपादकगण तथा कहानीकार-दल अपनी तमाम चूहा-दौड़ों के बावजूद अब तक पछाड़ नहीं पाए हैं। हिन्दी-प्रदेश में वह कथित आज़ादी किन्तु नृशंस विभाजन, निम्नमध्यवर्गीय गुरबत, पस्ती और शरतचन्द्रीय-जैनेंद्रीय स्त्री-पुरुष सम्बन्धी भावुक 'नैतिकता' के कुछ वर्ष थे। हर उस व्यक्ति के पास, जो संवेदनशील था और लिखित भाषा में स्वयं को अभिव्यक्त कर सकता था, कोई कहानी ज़रूर थी। मदन भारद्वाज ने कहानियां लिखना कब और क्यों छोड़ दिया इसके कोई उत्तर उपलब्ध नहीं हैं - यदि वे अब भी लिख रहे होते तो हिंदी के एक वरिष्ठतम कथाकार होते - लेकिन यह कहानियां तब के एक विकासशील युवा की रचनाएँ हैं जिनमें अपने वक्त के आकर्षणों, तनावों और संघर्षों के छोटे-छोटे चित्र हैं। इनमें लेखक बनने की कोई महत्वाकांक्षा नहीं है, सिर्फ आत्माभिव्यक्ति की एक सादा, 'आर्टलैस' कोशिश है लेकिन तब भी कई सामाजिक, पारिवारिक तथा मनोवैज्ञानिक नुक्ते इनमें निकल ही आए हैं। जिन अपमानों और अभावों का सामना निम्नमध्यवर्गीय व्यक्तियों और परिवारों को (आज भी) करना पड़ता है, उनका बेबाक चित्रण यहाँ मौजूद है। हम कह सकते हैं कि अपने समय में मदन भारद्वाज प्रेमचंद, ''निर्गुण'' और विष्णु प्रभाकर की कहानी के अनुयायी थे। यहाँ यह गौरतलब है कि वे विभाजन और उसके बाद के पंजाब-विस्थापितों में से हैं जिनके पास पंजाबी, उर्दू और हिन्दी का मिला-जुला विरसा था, लिहाज़ा उनकी भाषा में तीनों का एक सहज, निस्संकोच मेल देखा जा सकता है जो अब कहीं नहीं मिलता। यहाँ उनकी उर्दू कहानियाँ भी शामिल हैं, जिनमें से कुछ तो सद्य:निर्मित पाकिस्तान के रिसालों में छपी थीं - और इसके भी अपने कई दिल कचोटनेवाले निहितार्थ हैं। यह भी दृष्टव्य है कि इन सारी कहानियों के पार्श्व में मानवीय प्रतिबद्धता का मंद्र, मार्मिक संगीत हमेशा मौजूद है। इन्हें पढ़ते हुए यदि पाठकों को आजादी के बाद के लगभग दो दशकों की ''सामाजिक'', ''पारिवारिक'' ब्लैक-एंड-ह्वाइट, विशेषत: बलराज साहनी अभिनीत, फिल्मों के कुछ दृश्य याद आ जाएँ, तो वह स्वाभाविक और शायद श्रेयस्कर ही होगा। और जैसे यह अफसोस होता है कि अब वैसी फ़िल्में क्यों नहीं बनतीं, वैसे ही यह भी कि मदन भारद्वाज सरीखे संभावनाशील कथाकार ने इन प्रारंभिक, आजमाइशी कहानियों के बाद और क्यों नहीं लिखा।

-विष्णु खरे

(मदन भारद्वाज के कहानी संग्रह 'आकाश से धरती की ओर' का फ्लैप)

आगामी अंक में विष्णु खरे पर विशेष सामग्री दी जाएगी। पहले विष्णु खरे और फिर 24 दिसंबर, 2018 को पिता मदन भारद्वाज की मृत्यु के कारण संपादकीय लिखने का मन नहीं बना पाया। पाठकगण क्षमा करेंगे। **-अजेय कुमार,** संपादक

साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त होने पर
चित्रा जी को हार्दिक बधाई

हिन्दी की वरिष्ठ कथा लेखिका चित्रा मुदगल जी को वर्ष 2018 का साहित्य अकादमी पुरस्कार दिये जाने की घोषणा हुई है। यह पुरस्कार उन्हें उनके उपन्यास 'पोस्ट बाक्स नं. 203, नाला सोपारा' के लिये प्रदान किया जायेगा।

इस उपन्यास के अलावा एक जमीन अपनी, आवां व गिलिगडु जैसे उपन्यास व भूख, लाक्षागृह, अपनी वापसी, इस हमाम में, ग्यारह लंबी कहानियां, जिनावर, लपटें, जगदंबा बाबू गाँव आ रहे हैं, मामला आगे बढ़ेगा अभी, केंचुल, जैसे कहानी संकलनों में उनकी कहानियां संकलित हैं। उनकी कहानी पर बनी टेली फिल्म वारिस को दर्शकों ने खूब सराहा और एक कहानी, मँझधार व रिश्ते जैसे धारावाहिकों में प्रसारित उनकी कहानियां को भी टेलीविजन के दर्शकों ने खूब पसंद किया।

अपने सर्वाधिक चर्चित उपन्यास 'आवां' में उन्होंने मजदूरों के आंदोलन का नेतृत्व करने वाले नेताओं व जीवन में संघर्षशील स्त्रियों व पूंजीवाद की क्रूरताओं को केन्द्र में रखा है। इस उपन्यास में चित्रा जी ने मजदूरों के संघर्ष और उनके शोषण की दास्तां बयां की है।

पोस्ट बाक्स नं 203, नाला सोपारा के केन्द्र में समाज द्वारा उपेक्षित, तिरस्कृत एक किन्नर है । उपन्यास का केन्द्रीय पात्र विनोद उर्फ बिन्नीख के बारे में चित्रा जी का कहना है कि ''पहले मैं भी किन्नर को सामान्य नजरिए से ही देखती थी। मसलन, अन्य लोगों की तरह जब ये ट्रेन, बस में पैसे मांगने आते, तो मना कर देती थी। उनके प्रति किसी तरह की संवेदनशीलता नहीं थी। एक दिन नई दिल्ली, रेलवे स्टेशन पर ट्रेन में एक किन्नर चढ़ा। बातचीत में उसने जब अपनी कहानी बताई तो आंखें नम हो गईं और मेरा नजरिया भी बदल गया। सन 1979 में सफर के दौरान यह किन्नर मिला था। उसकी कहानी दिमाग में कौंध रही थी। उसने बताया था कि आठवीं पास करने के बाद ही उसे चंपाबाई एवं फिर तुलसीबाई के हाथ सौंप दिया गया, जो उसे साड़ी पहनने के लिए विवश करती थीं। इसे लिखने की पहले तो हिम्मत नहीं जुटा पाई, लेकिन सन 2011 की जनगणना में जब 'जीरोअदर्स' कॉलम में इन्हें रखा गया तो मैं स्तब्ध रह गई। आरक्षण सहित अन्य मुद्दे सामने आने पर उपन्यास लिखने का निर्णय लिया। 'उनकी दिली इच्छा है कि यह उपन्यास कोर्स में भी लगे जिससे छात्र व छात्राओं में किन्नरों के प्रति एक संवेदनशीलता जागृत हो सके और किन्नरों को लोग सम्मान भाव से देख सकें। उनका यह भी मानना है कि 'हमेशा ऐसी स्थिति नहीं रहने वाली। वक्त बदलेगा और वक्त के साथ नजरिया बदलेगा।'

चित्रा जी हिन्दी साहित्य में पहली ऐसी लेखिका हैं जिन्होंने किन्नरों के जीवन और उनकी मनःस्थिति पर एक बेहद संवेदनशील व मार्मिक उपन्यास लिखा है। इससे पहले किन्नरों पर कुछ कहानियां व लेख जरूर लिखे गये लेकिन समग्र उपन्यास नहीं लिखा गया। चित्रा जी इस उपन्यास में नाला सोपारा स्टेशन के पास रह रहे एक परिवार की कथा कहती हैं। उस परिवार में 'विनोद' का जन्म होता है लेकिन जब यह पता चलता है कि वह किन्नर है तो मां के विरोध के बावजूद उसे परिवार से अलग कर दिया जाता है और उसे नया नाम बिन्नी दिया जाता है। किन्नरों की दुनिया में पहुंच कर वह अपने आप को अकेला, उपेक्षित, तिरस्कृत और अपमानित महसूस करता है। तब वह अपनी मां को चिट्ठियां लिखता है और लिखता है :

''भूलते क्यों नहीं कीलों से चुभते प्रसंग। क्यों घुमड़ आते हैं तेरी स्मृतियों के कंधों पर दुबके। तेरी स्मृतियां जो मेरी साँसों में घुली हुई हैं, बा! उन्हें अपने से अलग करुँ, तो कैसे करुँ।'' वह चिट्ठियां पोस्ट बॉक्स नं 203 के पते पर भेजता है और इन चिट्ठियों में वह अपनी मां से अनेक सवाल करता है लेकिन उसके किसी भी सवाल का जवाब उसकी मां के पास नहीं है।

चिट्ठियों के शिल्प में लिखा गया यह एक अत्यंत मार्मिक और संवेदनात्मतक उपन्यास है जो हिन्दी साहित्य की एक ऐसी रचना है जो आने वाली पीढ़ियों को प्रेरित और प्रोत्साहित करती रहेगी। व्यास सम्मान, इंदु शर्मा कथा सम्मान, साहित्यकार सम्मान सामाजिक कार्यों के लिए विदुला सम्मान, राष्ट्रीय अवंतीबाई सम्मान व भारतीय भाषा परिषद कोलकत्ता का रचना समग्र शिखर सम्मान के बाद चित्रा मुदगल को इस वर्ष का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त होना हम सबके लिये गौरव की बात है।

चित्रा जी को हार्दिक बधाई व शुभकामनाएँ,

हरियश राय
उप-संपादक, उद्‌भावना
09873225505

कहानी

रफ्तार

□ राजेंद्र चंद्रकांत राय

कोई चीज चीत्कार करती हुई मेरे बेहद करीब से गुजरी। इतने करीब से कि मेरे सिर के बालों की दिशा तक बदल गयी।

खुद को स्थिर करने में जितना वक़्त लगा, उतने में वह चीज लापता हो चुकी थी। मैं वहीं था। भीड़ के बीच से एक रास्ता ,पल भर के लिए प्रकट हुआ था और फिर लुप्त हो गया।

शाम की तफरीह पर निकला था, लेकिन दमपस्ती के कारण लौट आया। पानी पी लेने और कुर्सी पर इत्मीनान से बैठ लेने के बावजूद दिल धड़-धड़ करता रहा। टांगें थरथराती रहीं और मन किसी काम में नहीं लग सका।

मौत बहुत करीब से गुजरी थी। वह थोड़ा सा इधर होती या मैं थोड़ा सा उधर होता, तो एक चिथड़ा लाश वहां पड़ी होती। मैंने पत्नी से कहा--बाहर खतरा बढ़ गया है।

फिर ऐसा हुआ कि दो-चार दिनों के गुजर जाने के कारण जो अंतराल उपस्थित हो गया था, उसने भय तथा आशंकाओं को पोंछ दिया। मैं उसे भूल गया। विस्मृति कुदरत की नायाब नियामत है। स्मृतियां मारती हैं और विस्मृति बचाती फिरती है। जिंदगी के साथ घटी तमाम बातें अगर याद रहीं आतीं तो जीना मुहाल हो जाता।

पर फिर वही हुआ। मैं सब्ज़ी का थैला लिये लौट रहा था कि फिर वही चीज मेरे बहुत करीब से सर्र की ध्वनि-तरंगों के तार उठाती हुई भागी और लापता हो गयी। कोहनी पर छिल जाने जैसी जलन हुई। मैंने छूकर उस जगह को राहत देना चाही,मगर वहां छिलन थी ही नहीं। बाहर की त्वचा सही सलामत थी, पर ऐसा लगता था कि मैं अंदर से लहुलुहान हो गया हूं। बाहर वही थरथराहट बज रही थी। मैं उसे साधकर लौट आया ।

लेकिन मैं लौटकर भी नहीं लौटा था। अपने को जैसे वहीं सड़क पर छोड़ आया था। वहां एक शरीर लिथड़ा हुआ पड़ा था। लुंज-पुंज । गठरीनुमा । वहां भीड़ लग गयी होगी और संदेह भरे सवालों में समय बिता रही होगी। किसी ने लाश को नहीं पहचाना। अगर पहचान लिया था, तो कोई यह बताने के लिए तैयार न था कि यह राजेंद्र चंद्रकांत राय नाम वाला शख्स है, जो पिछले तीस-चालीस सालों से इसी इलाके में रहता था। कि इसने इसी इलाके के स्कूल में, पिछले छत्तीस सालों में दसियों हजार लड़कों को पढ़ाया है और कभी-कभी अन्याय के खिलाफ इसी सड़क पर लड़ाईयां भी लड़ता रहा है। एक ज्ञात लाश मेरी यादों में पड़ी रही और पंचनामे के लिए तरसती रहा। खुद मैंने भी किसी को नहीं बताया कि वह जो उधर सड़क पर पड़ा हुआ है, वह मैं ही हूं।

रात का एकांत होते ही स्मृतियां और सबल हो गयीं। मुझे पता था कि मेरी लाश अब भी वहीं पड़ी होगी। गाड़ियां और लोग बच-बचकर निकल रहे होंगे। पत्थरों से एक घेरा बना दिया गया होगा. जैसे ही मेरी आंखें मुंदतीं, कि सड़क, भीड़, और लाश गुत्थम-गुत्था होने लगते। मैं अंधेरे में आंखें फाड़े लेटा रहा। पर जल्दी ही पलकें थक गयीं और गिर पड़ीं। मैंने देखा कि ज्ञानरंजन मेरी लाश के करीब से होकर गुजरने वाले हैं। वे 'पहल' का थैला लिए हुए थे। वे वहां रुके। दुख के साथ उस तरफ देखा भी। पर उन्होंने भी नहीं पहचाना। जब मैं उम्मीद कर रहा था कि वे चिल्लाकर कहेंगे कि, ये तो मेरे लेखक की लाश है, तब वे किसी अदेखे पर बड़बड़ाते हुए चले गये। 'तीसरा खत' के उत्तर की तरह, लापता क्षेत्र में।

मैं अफसोस में रहा हूंगा कि स्मृतियों पर नींद भारी पड़ गयी। खयालात, बेखयाली में चले गये। मरने की लाचारी ध्वस्त हो गयी। सुबह जागा, तो मुझे इस बात पर हैरत तक नहीं हुई कि मैं ही जागा हूं। मैं मरा नहीं था। और जब मैं मरा ही नहीं, तो वहां पर मेरी लाश कैसे हो सकती थी ? हादसे हो रहे थे और मैं जिंदा था।

बाहर, तड़के का स्टील ग्रे रंग फैल रहा था। चिड़ियाएं चहक रहीं थीं। कच्ची अमियां आंगन में फैली हुईं थीं। फूलों, पत्तों और पेड़ों पर मादकता की गंध विचर रही थी। ऐसे में भला कौन मरना चाहेगा ? भय, थरथराहट और लहू कहीं न था। अखबार आ चुका था और उसमें भी मेरे मरने की खबर न थी। जब अखबारों में भी मैं नहीं मरा,तो इसका सीधा मतलब था कि मैं सौ फीसदी जिंदा था।

जिंदगी फिर रवां हो गयी। पर ज़ेहन से वह चीज निकलती ही न थी, कि आखिर वह है क्या, जो मुझे मार डालने पर आमादा है। जो मुझे दो बार मार चुकी है और न जाने अब तक कितनों को मार चुकी होगी। दो बार मौत के घाट उतरना भयानक अनुभव था। इसीलिये जिज्ञासा, अब बलबला बन चुकी थी। इतनी, कि वह मौत के भय से भी ज्यादा ताकतवर हो चुकी थी। उन्माद बन गयी थी। उन्माद कोंचता था। मुझसे कुछ तय करा लेना चाहता था।

मुझे भरोसा था कि वह चीज एक दिन ज़रुर बेपर्दा होगी। सिर्फ ध्वनि से ही नहीं, दृश्य से भी साक्षात्कार होगा। मैं उसके इंतज़ार में अपने घर के गेट पर खड़ा रहने लगा, कि आखिरकार वह यहां से भी गुजरती ही होगी। कोई सड़क, कोई गली, काई चौराहा जब उससे खाली नहीं है,तो वह इस रास्ते से भी बावस्ता होगी ही। जो हर जगह मुझ पर दनदनाती रहती है, वह मेरी खोज में इधर भी ज़रूर ही आयेगी। भरोसा था।